

गोकुल में पूतना मौसी का आगमन

[८५५]

कंसेन ग्रहिता घोरा पूतना बालवातिनी ।
शिशुञ्चचार निमन्तौ पुरग्रामप्रजादिषु ॥
सा खेचर्येकदोपेत्थ पूतना नन्दगोकुलम् ।
योपित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ॐ

(श्री भाग० १० स्क० ६ अ० २, ३ श्लोक)

छप्पय

झुकरनि जोरे बैल नन्द वसुदेव मिले पुनि ।
गोकुलकुँ बलि दये कथा अब एक कहँ सुनि ॥
निज रिपु हनिवे हेतु पूतना कंस पठाई ।
सब थल मारत शिशुनि लेचरी गोकुल आई ॥
पीन पयोधर भारती, नमित चलति छैलिनि वनी ।
केश-पारामह मल्लिका, युँ थी कुसुममाला धनी ॥

* श्रीगुरुदेवजी कहते हैं—“राजन् ! कल के द्वारा मेजो हुई घोर
रूपा, बालको को मारने वाली पूतना राक्षसी नवरों, ग्रामों तथा गोधों
के गोष्ठ घादि में सद्यःजात शिशुओं को मार रही थी। एक दिन वह
कामचारिणी खेचरी पूतना नन्दजी के गोकुल में घाभी और अपनी
प्रासुरी माया से अत्यन्त सुन्दरी सुवती का रूप बनाकर अन्तःपुर में प्र-
वेश की।”

कभी-कभी संकोचवश ऐसी-ऐसी घटना घटित हो जाती है, कि जिनका परिणाम कुछ से कुछ हो जाता है। भ्रमवश कोई कुछ समझ लेता है कोई कुछ। एक चोर ने गुरु के सम्मुख प्रतिज्ञा की, कि मैं भूठ न बोलूँगा। राजा के यहाँ चोरी करने गया बड़े ठाठ-बाट में। सुन्दर वस्त्राभूषणों को पहिने निर्भय होकर चला गया। प्रहरी ने पूछा “आप कौन हैं, उसने निर्भय होकर कहा—“हम चोर हैं?” संयोग की बात उन्हीं दिनों महाराज का साला भ्राया था। प्रहरी ने सोचा—“चोर तो इस प्रकार निर्भय होकर जा नहीं सकता। फिर चोर आपने मुँह से कैसे कहेगा। निश्चय ही यह रानी के भाई हैं।” इसी संकोच में पडकर उसे रोका नहीं। वह निर्भय होकर घुस गया और सुन्दर-सा घोड़ा चुराकर उसी प्रकार निकल गया। ऐसी ही अनेकों भ्रमवश भूलें हो जाती हैं। परिस्थिति ऐसी हो जाती है कि न तो पूर्ण ही बनता है और सहसा अविश्वास ही किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में दुस्साहसी पुरुषों को अपना स्वार्थ सिद्ध करने का प्रवसर प्राप्त हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो! नन्दजी को वसुदेवजी की बात सुनकर शक्ता हो गयी। प्रम में पग-पग पर अनिष्ट की शक्ता बनी हो रहती है। मेरे लाला का कुछ अनिष्ट न हो, वसुदेवजी ने क्या सावककर यह बात कही। मैं तो जन में सब कुशल छोड़कर भ्राया था। मेरे यहाँ तो ६ दिन से निरन्तर उत्सव की धूम मची थी, अब सहसा गोकुल में क्या उरगात हो सकता है। वसुदेवजी साधारण भावभी नहीं हैं, उन्हें कुछ न कुछ आभास तो भिन्न हो गया होगा। मैं तो यहाँ मार्ग में हूँ, क्या कर सकता हूँ। इसी प्रसार की बातें मोचते-मोचते नन्दजी मार्ग में चले जा रहे थे जब उन्हें कुछ नहीं सूझा तब व श्रीहरि की सारण गये। वो

विद्वज्ज का पालन करते हैं, चराचर प्राणियों की रक्षा करते हैं वे मेरे लालजी की भी उत्पातों से रक्षा करेंगे। इस प्रकार मन को समझाते हुए वे शीघ्रता के साथ गोकुल की ओर बढ़ रहे थे।

इधर कस मामा की मनाया जो वे वहिन जी कहते थे, उसने यह बौड़ा उठाया था कि मैं ब्रज भर में दश दिन के पैदा हुए बालको को दश दिन में मार डालूँगी। कम मामा ने पूछा—
“वहिन जी! तुम्हारे लिये किस रथ का उडनखटोले का प्रबन्ध कर दें क्योंकि ब्रज ८४ कोस का है पैदल तुम वहाँ-कहाँ जाओगी।”

पूतना भीमी ने कहा—“ता, भैया! मुझे जलयान धलयान, वायुयान किसी की आवश्यकता नहीं। जैसे तू पूर्व जन्म में कालनेमि असुर थे, वैसे ही मैं भी पूर्व-जन्म में राक्षसी थी। यहाँ ब्रज में मानवी योनि में जन्म लेने पर भी मुझे राक्षसी विचारों सब आती हैं। मैं कामचारिणी हूँ, स्वेच्छा से रूप बदल सकती हूँ, पाकाश में उड़ सकती हूँ, बड़े में बड़ा छोटे में छोटा, सुन्दर से सुन्दर कुरूप से कुरूप रूप रख सकती हूँ। मैं भोजवान्तर अपने कुचों में कालकूट विष लपेट कर घर घर जाया करूँगी। जो बच्चे छोटे होंगे, उन्हें वह विष मिश्रित दुग्ध मिलाकर मार दिया करूँगी। तुम्हारा शत्रु पैदा तो ब्रज में ही हुआ है, सब बच्चों के साथ वह भी मारा जायगा।”

कस ने कहा—“तब तुम्हारा कार्यक्रम क्या रहेगा?”

पूतना ने कहा—“मेरा कार्यक्रम अत्यन्त गुप्त रहेगा। मैं किस दिन किस दिशा में जाऊँगी, यह बात मैं किसी को भी न बताऊँगी।”

कस ने कहा—“यह उपाय सुन्दर है, हमारा शत्रु भी मर

विघ्न पड़ता है। फल फूलवाले वृक्षों को अन्य घास फूस या काटें-
दार वृक्ष हानि पहुँचाते हैं, उन्हें वह काट देता है। किसी को
उत्पन्न होते ही काट देता है, किसी को बढ़ने देता है, बड़े
होने पर काटता है, किसी की डालीको काट देता है। किसी की
एक दूसरे से जोड़कर कलम लगा देता है। इसी प्रकार विष्णु
भगवान् का कार्य प्राणियों की रक्षा करना है। जगत् के प्रवाह को
स्थिर रखना है, इसमें जो असुर राक्षस, मनुष्य पशु-पक्षी बावा
पहुँचाते हैं, उनका वे विनाश कर देते हैं, करा देते हैं, किसी को
बढ़ाकर मारते हैं, किसी को जन्मते ही मार डालते हैं। प्रतीत
होता है, उन दिन कस के पक्ष को प्रबल बनाने के निमित्त असंख्य
असुर व्रज में पैदा हो रहे थे। भगवान् ने सोचा—“अब इन सद्यः
जात शिशुओं पर मे क्या हाथ चलाऊँ। मौसी के द्वारा ही इनकी
इतिश्री करादूँ। जब मेरे पास यह पारितोषिक माँगने आवेगी,
तो मैं इसे मोक्ष का मार्ग दिखा दूँगा। संसार बन्धन से इसे
विमुक्त बना दूँगा। मोक्ष ही सबसे उत्तम परम पुरुषार्थ है। यही
मैं मौसी को दे दूँगा।” इसलिये भगवान् की प्रेरणा से ही यह
असुर रूप में प्रकटे वालकों को मारती रही। गोकुल की इसे याद
तक नहीं आयी। अब जब सब असुर बालक मर चुके, तब वह
भगवान् के पास आयी। पूतना के विष मिश्रित पय को पीकर
कंस पक्षीय असुर ही मारे गये। कृष्ण पक्षीय बालकों की ओर
तो पूतना ने घालि उठाकर भी नहीं देखा।”

इस पर शोकजी बोले—“हाँ, सुतजी! भगवान् की प्रत्येक
लीला में अनन्त श्रुद्धि भरे पड़े हैं। यह संसार भगवान् की
कोड़ा भूमि है। भगवान् इसमें जो भी कर रहे हैं। शिव की कोई
भी चेष्टा अशिव नहीं हो सकती। आनन्द स्वरूप की कोई भी
लीला निरानन्द नहीं होती। मनुष्य अभिमान के वशीभूत होकर

यह कहता रहता है, यह नहीं हुआ वह नहीं हुआ। यह भगवान् ने अच्छा नहीं किया। भगवान् तो अच्छाई के अतिरिक्त दूसरी बात जानते ही नहीं। जैसे मिठाई बेचने वाले के पास मिठाई ही होगी। बिप बेचने वाली दुकान पृथक् होती है। अच्छा, तो फिर क्या हुआ ?”

सूतजी बोले—“हाँ, महाशय सुनिए; पूतना उडकर गोकुल के बाहर पहुँची। वहाँ उसने देखा पहे पर बहुत से गोप खड़े हैं। अपने यथार्थ रूप से तो वह भीतर जा नहीं सकती थी। वह इच्छा के अनु रूप बनाने में समर्थ थी, अतः उसने एक प्रत्यक्ष ही सुन्दरी सुकुमारी स्त्री का रूप धारण कर लिया। ऐसी तक उसकी बेखो लटक रही थी, उसमें मालती, मावघी, मल्लिका, मूयिका आदि के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ गुँथी थी। उसके रेशमी महोत वस्त्रों में से उसका रूप योवन छन-छनकर व्रज की गलियों में गिर रहा था। एक हाँव लम्बे घूँघट से से उसका मुख उसी प्रकार दोख रहा था, मानो चन्द्रमा के हलके आवरण से ढका हुआ हो। उसकी कमर इतनी पतली थी कि बसलता की भाँति हिलती-सो बिसायी देती थी। नितम्बों का भाग स्थूल था। इस कारण चलते समय व्रज की बोटियों में उसरी ऐडियाँ घस जाती थी। कबुकी से आवद्ध उसके पीन पदों पर दो चचल मोनों का समान हिल रहे थे। उसके अंग के तहंगा, फरिया, कबुकी आदि सभी वस्त्र सुन्दर चमकीले तथा बहुमूल्य थे। उनके बमलमुख पर बिथुरे हुए काले-काले छुँघराले बाल ऐसे प्रतीत होते थे, मानो सुवर्ण वक्र के ऊपर बड़ी-बड़ी काली सिसार पायु में हिल रही हों। वानों के कमनोय कनक कुण्डल हिलते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो दो विविध अयजन ध्यान की मन्त्रियों की उड़ा रहे हों और कपोलों की चमकाकर उनकी शोभा को बढ़ा

रहे हो। पहले वाले गोप बड़े सजग थे, मन्दबाबा जाते समय भाँति-भाँति से समझा गये थे, अतः वे शक्ति भर किसी भी अपरचित को भीतर भवन में नहीं जाने देते थे। किन्तु धम्म पुर में सियों को कौन रोक सकता है। कोई साधारण स्त्री होती तो उससे पूछ भी लेते—‘तू कौन है, कहाँ जाती है, वहाँ से आयी है क्या काम है?’ किन्तु यह तो अत्यन्त बनी ठनी थी इसके प्रभाव से ही सबके सब प्रभावित हो गये। किसी ने कुछ पूछने का साहस भी किया, तो इसने धूँध को आट म से कजरारे नेनी की जो चोट मारी, कि गोप लोट पोट हा जाते। अपनी मन्द मन्द मनोहर मुस्कान से, कुटिल कंठोले कटाक्ष से युक्त चित्त को चुराने वाली चितवन से चतुरो के भी चित्त को चुराती हुई, सबको अपने रूप जाल के जादू में फँसाती हुई यौवन के मद में मदमाती इठलाती हुई इत-उत अपने चंचल नेत्रों से देखती हुई, छम्म-छम्म का ध्वनि से व्रज पथ को मुलरित करती हुई, पूतना मौसी अन्त पुर में पहुँच ही तो गयी।

ऐसी परम सुन्दरी, रूपवती, नागरी युवती को देखकर गोष्ठ की रहन वाली गोपियाँ सम्म्रस से पड़ गयी। वे सहसा उठकर खड़ी हो गयी। रोहिणीजी भी वहाँ थी। वे समझी लावाँकी नमसानकी महराने की कोई रानी होगी। यशोदा भैया समझी कोई रोहिणीजी की सखी होगी। मथुरा से आयी होगी। अतः दोनों ने ही उसका अत्यधिक आदर किया। बैठने को पीछा दिया।

लालजी कुछ दूर पलकिया पर पीछे रहे थे। उन्होंने टेढ़ी दाख स उस छल चिकनियाँ बनी सुन्दरी युवती को निहार। ‘शौनकजी ने पूछा—‘तूतजी! भगवान् ने टेढ़ी दाख से क्यों देखा?’

हँसकर सूतजी बोले—‘जजी महाराज! इनके मनके यथार्थ

भाव को कौन जान सकता है। सब ऊपर ही ऊपर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान लगाते हैं। कोई कहता है—“क्योंकि यह टेढ़ो बनकर गयी थी, भगवान् की ता प्रविज्ञा है, जो मुझे जिस भाव से भजता है, मैं भी उसे उसी भाव से भजता हूँ।” इसलिये टेढ़ो दृष्टि से देखा।” कोई कहते हैं, भगवान् ने सोचा “बनकर तो यह मैं आयी है काम माता के विपरीत करना चाहती है” इसलिए टेढ़ो दृष्टि से देखा। कोई कहते हैं—“भगवान् यदि सीधो दृष्टि से देखते, तो यह यही सीधो हो जाती, इसलिए टेढ़े देखकर उसे टेढ़ो ही बनी रहने को बाध्य किया।” किन्तु हमारा तो मत है, “इस टेढ़ी टाँगवाले की सभी बातें टेढ़ी ही हैं। इसलिए इसकी चितवन भी सदा टेढ़ी ही होती है। कहीं घुसकर सीधो हो जाती है, कहीं टेढ़ी हो बनी रहती है। हाँ, तो फिर एक बार देखकर तुरन्त उन्होंने नेत्र बन्द कर लिये और और भ्रमकियाँ लेने लगे।”

इस पर शौनकजी ने पूछा—“सूतजी! भगवान् ने दूध पिलाने के लिए धाने वाली मौसी को देखकर नेत्र क्यों बन्द कर लिये।” सूतजी ने कहा—“महाराज इस कारे की करतूतो के सम्बन्ध में कोई भी ‘इदमित्य’ ऐसा हो है यह साधिकार नहीं कह सकता। अपने-अपने अनुमान लगाते हैं। कोई कहते हैं—“नन्द-नन्दन को लाज आ गयी, कि यह तो इतनी बदन ठनकर दूध पिलाने आयी है, मैं इसके प्राण लेने वाला हूँ।” कोई कहते हैं—“भगवान् ने संकोचवश नहीं देखा कि मुझे अभयवाता कहते हैं, इसे मुझसे भय होगा।” कोई कहते हैं—“भगवान् नेत्र बन्द करके ध्यान कर रहे हैं, कि यह तो मुझे दूध पिलावेगी, मैं इसे इसके बदले में कौन-सी वस्तु दूँगा।” बहुत से कहते हैं—“भगवान् ने सोचा—“यदि इस राक्षसी से मेरी बार आँखें हुई और

इसने मुझे नेत्र भरकर देख लिया, तो फिर यह अपने आपे में न रहेगी; घरीर की सुधि-बुधि भूल जायगी। उसी समय इसका मायावी रूप नष्ट हो जायगा। गोपिकाएँ तथा दोनों माताएँ डर जायेंगी। ब्रजभर में कोलाहल हो जायगा। धनुष बाण लेकर गोप आ जायेंगे। रग में भंग हो जायगी। गोपों द्वारा भरकर इसकी वह गति न होगी, जो मैं इसे देना चाहता हूँ।”

कोई कहते हैं—“भगवान् ने घृणा से नेत्र बन्द कर लिये, कि यह कसी बुरी लुगाई है, भीतर दुर्वासना भरी है ऊपर से चिकनी चुपड़ी सुन्दरी बन रही है। विप रस से भरी कनक के गगरी के समान इसे क्या देखें।” कोई कहते हैं, “भगवान् के उदर में असंख्योँ ग्रहाण्ड भरे थे वे सब डर गये, कि भगवान् इसके पयके साथ विपको पो गये, तो हम सब स्वाहा हो जायेंगे। इस पर भगवान् ने नेत्र बन्द करके भीतर की ओर देखा। अपनी दृष्टि को अन्तर्मुख करके सबको धैर्य बंधाया, कि कोई चिन्ता की बात नहीं विपका में प्रभाव न होने दूँगा।”

कोई कहते हैं—“भगवान् को तो विप पीने का अभ्यास नहीं सदा दूध पिया है। अब यह विप पिलाने आयी है। विप पीना शंकरजी पर आता है। मानो नेत्र बन्द करके शंकरजी का ध्यान कर रहे हैं।” कोई कहते हैं—“नेत्र बन्द करके भगवान् पूतना की उत्सुकता को बढा रहे हैं। बच्चा हाथ फेलाते ही गोदी में आ जाय, तो उसमें उत्तना आनन्द नहीं आता। कुछ दिन पिल-वाड करे मान करे, उपेक्षा दिखाये, तब लेने की उत्कण्ठा बढती है, इसलिए उत्कण्ठा-वृद्धि के निमित्त भूप्रिया लेने लगे।”

कोई कहते हैं—“भगवान् ने सोचा, यह तो यगकर भायी है है माँ, यह कहती है मेरे पूत-ना, पूत-ना। मैं कहूँगा मैं तेरा पूत हूँ मैं तेरा पूत हूँ। पुत्र नहीं है जो पुत्राभाष गरफ से

को पार करे। अब सोचते हैं बड़ा होकर मैं इसे पार करूँ, तब तक तो मेरी माँ मुझमें भूत का आवेश समझकर डर जायगी। इसकी इच्छा मुझे दूध पिलाने का भी है। यह इच्छा इसकी शेष रह गयी, तो इसे पुनर्जन्म धारण करना होगा। अतः इसे दूध पीते ही पीते चुपके म प्राणों को पी जाऊँगा। मुझ पर भी कोई शका न करेगा और इसकी भी सद्गति हो जायगी। यही सब सोचते-सोचते इयामसुन्दर को शेष लोया की याद आ गयी और योगनिद्रा में ऋषिकर्मा लेने लगे।”

कोई कहते हैं—“भगवान् ने सोचा यदि मैं नेत्र खोले रहूँगा, तो यह अपने भाव छिपाने की मेरी ओर न देखकर इधर-उधर देखने लगेगी। कहीं सकर्षण बलरामजी की इस पर दृष्टि पड़ गयी और उन्होंने इसे क्रोध में भरकर ब्रूस लिया तो जगम विष से स्थावर विष उतर जाता है। यह विषहीना हो जायगी। इस सुन्दरी को देखकर गोप भगवन्ने लगे—“मैं इसे अपनी घर वाली बनाऊँगा; मैं इसे अपनी घर वाली बनाऊँगा।” तब गोप-वंश में यह वंशोत्कर्षता उत्पन्न करेगी; अतः इसकी इति श्री कर दो।”

हैंसर शीनकजी ने कहा—“अब सूतजी कहते ही जाओगे, कहीं इसका अन्त भी करोने? कोई कुछ कहता हो, तुम क्या कहते हो; तुम्हारा क्या मत है। भगवान् ने पुत्रना को देखकर वयो नेत्र बन्द कर लिये।”

सूतजी बोले—“महाराज ! मेरी बुद्धि में तो कोई विशेष कारण दीखता नहीं। बाल सुलभ भंगी हैं। छोटे बच्चे प्रायः समिक देखते हैं, पुनः नेत्र बन्द कर लेते हैं। इसी प्रकार यद्यो नन्दन ने शिशु सुलभ ललित लीला का अनुकरण किया।”

। बोनकजी ने कहा—‘सूतजी ! यही भाव सुन्दर हैं । हाँ तो उस बालपातिनी के भाव को किसी ने समझा क्यों नहीं ।

सूतजी बोले—‘अब महाराज ! समझने का वहाँ किसे अवकाश था, सभी लाला के जन्म के उत्सास में अपने आप को भूले हुए थे । नित्य ही सहस्रो स्त्री पुरुष बघाई देने लाला को देखने आते । गाँव की गोपियों ने ऐसी सुन्दरी को देखी ही नहीं थी । वह तो हाथ में क्रीड़ा कमल लिए हुए साक्षात् लक्ष्मी-सी ही दिखायी देती थी, मानो अपने खोये हुए पति को घर-घर खोजती-फिरती हो । फिर कोई उस पर सन्देह क्यों करने लगा ।’

उसने मद-मद मुसकराते हुए यशोदा मँया तथा अन्य गोपिकाओं से कहना आरम्भ किया—‘आप तो मुझे क्यों जानती होगी । मेरा घर मथुरा में है । मैं एक वेदपाठी विप्र की बड़ी बहन हूँ । मैंने सुना नन्दरानी के बुद्धावस्था में बेठा हुआ है, वे सबको मनमाने वस्तु बाँट रहे हैं । नारायण की दया से मेरे यहाँ किमी बात की कमी तो है नहीं, मुझे कुछ लेना तो है नहीं । हाँ बालक को आशीर्वाद देना था, इसीलिए मैं दोड़ो-दोड़ी चली आयी ।’

यशोदा मँया ने कहा— पण्डितानीजी, आपने बड़ी कृपा की; आप के ही आशीर्वाद से यह बच्चा जी जाय, घड़ा हो जाय ।’

उसने चलाकर हाथ मटकाकर पुतना बोली—‘तुम्हारा बच्चा जुग जुग जीवेगा । इसके बहूत से क्याह हो, लाखों मोक्षी देता हो । हाँ एक बात तो मैंने कहा ही नहीं । तुम देखती हो मेरी छाती में कितना दूध भरा है । लाला मेरे दूध को पीले, तो फिर यह अजर प्रमर हो जायगा ।’

सूतजी कहते हैं—‘मुनियो ! यशोदा मँया तथा रोहिणी मँया किसी को भी यह बात अभीष्ट नहीं थी, कि हमारे लाला को कोई अपरिचित महिला दूध पिलावे, किन्तु वह एक अत्यन्त बनी

ठनी, सजी बजी, बड़े घराने की भद्र महिला प्रतीत होती थी। वह अपने रूप के प्रकाश से नंद-मवन को प्रकाशित कर रही थी। उसके तेज से प्रभावित होकर इच्छा न रहने पर भी यशोदा जी तथा रोहिणीजीने दूध पिलाने में अपनी स्पष्ट अक्षमति प्रकट न की। दोनों मातायाँ की मौन-स्वीकृति समझकर उस मायाविनी महिला ने शीघ्र पर सोये हुए श्यामसुन्दर को रहस्यमयी दृष्टि से देखा। वह नहीं जानती थी, कि ये दुष्ट जना के बाल हैं। शिशु रूप में उसी प्रकार छिपे हैं, जैसे राख में अग्निदेव छिपे हुए हैं, रेशमों वस्त्र की कचुकी में ढंके हलाहल विष से लिपटे उसने अपने बड़े-बड़े लम्बे और गुफ्ट स्तन बाहर किसे और झपटकर पलकिया पर से लासजी का उठा ही तो लिया। लालजी ऐसे भोरे बन गये, कि उन्होंने ऐसा भाव प्रदर्शित किया, मानो मेरी माता ने ही उठाया हो। न तो रोय और न गोद में छाने में श्रानाकानी की। उन्हे जो लेना चाहता है, उसकी गोद में तुरत चले जाते हैं। पूतना की गोद में लालजी लेट गये; या उसने लिटा लिया।"

छप्पय

मायातै अति सुधर नारिको रूप बनायो ।
 मधुर मधुर सुसकाइ सवनि को चिच चुरायो ॥
 महराने की समुक्त रोहिणी विहसि बिठाई ।
 यशुपति समझी नई वह मधुरातै आई ॥
 गगरी सोने की सुधर, भरि विष ढकितै धरी ।
 लो ठगिनी गोरी बनी, कारेके पल्ले परी ॥

पूतना-पयपान

[८५६]

तस्मिन् स्तन दुर्जररीर्यमुल्लवणम्,
घोराङ्गमादाय शिशोर्ददावथ ।

गाढं कराभ्यां भगवान् प्रपीडय तत्,
प्राणैः समं रोपसमन्वितोऽपिवत् ॥३॥

(श्री भाग० १० स्क० ६ अ० १० श्लोक)

छप्पय

बनि अति सुन्दर नारि महलमह वैठी लुच्ची ।
गरल लपेटी दई लालके मुलमह चुच्ची ॥
हरिऊँ आयो रोप पकरिकर वोवो लीगही ॥
कचकचाइके चढ़े घुटमुनि मुलमह दीगही ॥
पीने पय प्रभु प्रान सग, अति अद्भुत छवि लालकी ।
गातु निहारति चकित चित्त, बनी अकबकी सी-बकी ॥

भक्तों की भेंट के लिये भक्तवत्सल भगवान् सदा भूषे
प्यासे बने रहते हैं । भगवान् को वस्तुधा की चाह नहीं । उनके
यहाँ मुख्यवान् भयवा साधारण इसका कोई भय ही नहीं ।

* श्रीगुरुदेव जी कहते हैं—'राजन् ! ब्रज में उस झरूँर स्वभाव
वासी बकी ने तिलु रूप श्रीकृष्ण के मुख में अपना दुर्जर विषयुक्त स्तन
दे दिया । भगवान् भी उस भयने दोना हाथों से कसकर दबाते हुए रोप
में भर कर प्राणों के सहित उनके पय का पान करने लगे ।'

उनकी दृष्टि में या तो सभी मूल्यवान् हैं अथवा सभी साधारण। उन्हें चाहें छप्पन भोग लगाओ या एक तुलसी पत्र ही अर्पण कर दो। दोनों ही वस्तुओं में से भाव ग्रहण कर लेंगे। वास्तव में वे भाव के भूखे हैं। जो सात्त्विक भाव से उन्हें अर्पण करते हैं, सात्त्विक होकर पाते हैं। राजस् अथवा तामस भाव से अर्पण करते हैं, तो राजसी तामसी बनकर पाते हैं। उन्हें जो विष प्रकार भजता है, वे भी उसे उसी प्रकार भजते हैं। जो रोप से कपट से उनके सम्मुख उपहार लेकर आता है, उसके उपहार को कपट बेप रखकर रोप के साथ ग्रहण करते हैं, किन्तु परिणाम सभी का सुन्दर हो होता है। किसी भी भाव से भगवान् के समीप कोई क्यों न आवे, उसका मङ्गल ही होता है, उसको दुर्गति न होकर सुगति ही होती है।

सूतजी कहते हैं—“मनियो ! अलि वन्द किये पड़े हुए लाल-जी को देखकर पतना को भ्रम हो गया, कि यह भी साधारण सद्यःजात गोप बालक है, जैसे अपने स्तन का दुर्जर विष युक्त पय पिलाकर अन्य बालको को मार डाला है, उसी प्रकार इसे भी मार डालूँगी। यही सोचकर उसने श्रीकृष्ण को उसी प्रकार गोद में उठा लिया, जिस प्रकार किसी सोये हुए सर्प को रस्ती समझकर कोई उठा ले, अथवा गुडमुड़ो मारे विच्छू को कोई बहुमूल्य मछि समझ कर उठा ले, अथवा पत्त वालो के द्वारा डारे गये वनावटो सुवर्ण को मच्छा सुवर्ण समझकर कोई मार्ग में से उठा ले, अथवा विष मिश्रित मोदको को कोई स्वादिष्ट मिठाई समझ कर उठा ले। अथवा विच्छू के पैरों को कोई सुदूर राग समझकर हाथों से तोड़ ले। लालाजी का तो स्वभाव है, जो उन्हें बुलाता है, उसके पास जाते हैं, जो उन्हें प्यार करता है उससे सहज गुना प्यार करते हैं, जो उनसे छल करता है, तो उसे छल

स्वभाव है तमोगुणो, पहिले पहिल ओठो से विष का ही स्पर्श हुआ
इसलिये तमोगुणो रोष हो आया। यदि ऊपर दूध होता नीचे
विष होता तो पहिले पहिल हँस जाते। अथवा रोष का कारण



यह भी हो सकता है, कि भगवान् ने सोचा—“देखो, यह कैसे
दुष्टा राक्षसी है। सपिण्डी को छोड़कर या अत्यन्त व्यभिचारिणी
को छोड़कर कोई भी माता अपने बच्चे को मारना नहीं चाहती।
यह स्तन पिलाकर माणुष्य को कलंकित कर रही है, मैं इसे इतना

“फल बला हूँ।” अथवा रोष का कारण यह भी हो सकता है, कि स्तन पिलाने का अधिकार तो मेरी माँ को ही है या धातु को है। मेरी माँ ने इन्हे धातुपद पर निमुक्त भी नहीं किया यह अपने प्राण धातु बन गयी है तो जैसा देवता हो वैसे उसकी पूजा भी करनी चाहिये, इसने बल-पूर्वक मुझे छाती से चिपटाया है, मैं भी इसे बल-पूर्वक दबाकर इसका पारितोषिक दे दूँ, अथवा मेरे विचार से तो यही उचित जान पड़ता है कि दूध के भरे स्तनो को देखकर बालकृष्ण उनमें बछड़े की भाँति हुड्डा मारने लगे। और उस पर कुपित हुए, कि इतने दूध को तुम ही भरे रहोगी ? मुझे न पीने दोगी। बालक जब स्तन को पान करता है तो कसकर माता के स्तन को पकड़ लेता है, इसलिए बड़े-बड़े स्तनो को अपने कोमल पल्लव सदृश करो से पकड़ पकड़ कर चुसुर-चुसुर करते हुए लालजी अपने बनीं ठनीं धाय के दूध को उमग के साथ पीने लगे। पय के साथ उसके प्राणो को भी पीने लगे।”

शौनकजी ने कहा—“सूतजी ! पूतना तो भगवान् को विष और दूध दो वस्तु पिलाने धायी थी, भगवान् उसके प्राणो को भी क्यों पीने लगे। क्या यह अघर्म या लोभ नहीं हुआ। भगवान् ने बिना दो हुई वस्तु पर बल पूर्वक अधिकार क्या जमा लिया।”

सूतजी बोले— महाराज ! इन भगवान् में यही तो विशेषता है। जो तनिक देने को बढता है, उसका सर्वस्व ल लेते हैं। बलि ने तीन पग पृथ्वी ही देने का तो सकल किया था, उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया। ये तनिक से सन्तुष्ट नहीं होत, जिसे अप-नाते हैं उसका सर्वस्व हथिया लेते हैं। फिर दान के साथ कुछ सागता भी तो चाहिए। साग वाले से साग लेने के अनन्तर कुछ रूकथोक भी तो माँगते हैं। दूध विष उसने स्वेच्छा से दिया, प्राण भगवान् ने रूक मे ले लिये।

शौनकजी ने कहा—“हाँ, तो सूतजी भगवान् जब पय के साथ उसके प्राणों को भी पीने लगे, तो उसने कुछ कहा नहीं ?”

सूतजी बोले—“बसो, महाराज ! कहती बसो नहीं ! भ्रष्ट वताइए, बिना इच्छा के कोई किसी के प्राणों को पीने लगे, वो वह चिल्लायेगा नहीं । जिस समय भगवान् समुद्र को विष के लिए भद्रावल से मय रहे थे, उस समय समुद्र उछल रहा था अपनी तरंगों द्वारा अहर-अहर शब्द करता हुआ घबित भगवान् को मनाकर रहा था, किन्तु भगवान् ने उसके कण्ठ क्रन्दन को और ध्यान ही न दिया । मथकर विष निकाल ही लिया । थाय भी मानो वे समुद्र के स्थान में पूतना के स्तनरूपी सुमेरु शिखर को अपने मुख रूपी रई द्वारा थोड़ो की रज्जु से मय रहे हों ! प्राणों के पान करने से पूतना के सम्पूर्ण मम स्थानों में पीड़ा होने लगी ! वह मोटी भैंस के समान अपने स्तनों को हिलाती हुई, हाथ परो को फट फटाती हुई इधर से उधर दौड़ने लगी और बारबार कहती—‘अरे छोड़ दे, अरे छोड़ दे ।’ उस समय बालकृष्ण उनके स्तनों से लटके ऐसे प्रतीत होते थे मानो—बड़े भारी कटहल के तने में लम्बा-सा फन लटक रहा हो । जब उनकी पीड़ा अत्यन्त बढ गयी, तो वोम से थकी घोड़ी की भाँति वह बिबरा होकर गिर गयी और चिल्लाने लगी—‘छोड़ दे, छोड़ दे ।’

बालकृष्ण तो सात ही दिन के थे, उत्तर कैसे देते ? बुढ़ी को मुख में दयाय ही दवाये उसकी ओर देखने लगे; मानो संकेत से कह रहे हों—“मोसी जी ! पहिले तो मे किसी को पकड़ता हूँ नहीं; पकड़ना हूँ, तो फिर छोड़ता नहीं । पकड़कर छोड़ना तो मैं अपने गुरु से मोखा ही नहीं ।”

धव राक्षसी बधा करती, वह बार-बार हाथ पैर पटकने लगी, रोने चिल्लाने लगी, उसके नेत्र फट गये, सम्पूर्ण शरीर पसीने से लथपथ हो गया। उसके मुख से चीत्कार के सहित भयंकर शब्द निकलने लगा। उन अत्यन्त भयावह शब्द से पर्वतो सहित पृथ्वी डगमगाने लगी। अन्तरिक्ष में ग्रह, नक्षत्र और तारे अपने अपने स्थान से हटने लगे। साता पातान खलबलाने लगे। दशा दिशाएँ घूर्जने लगीं। लोग ने समझा अवश्य ही कहीं वज्रपात हुआ है, आशंका से जनको लोग भूति होकर भूमि पर गिर गये।

पूतबी कहते हैं—“मुनियो ! अत्यन्त व्याकुलता में वह राक्षसी अपने मायावी रूप की रक्षा न कर सकी। हडबडाहट में उसकी माया नष्ट हो गयी, वह अपने यथाथ राक्षसी रूप में प्रकट हो गयी। उस समय उसकी आकृति अत्यन्त ही भयावह थी। पर्वत की कदरा के समान उसका मुख था। हलकी फार के समान उसकी तीक्ष्ण दाढ़ें थी, सूँटे के समान उसके आगे के दाँत थे। सूप के समान उसके दोनों कान थे। पहाड़ के विवर के समान उसके दोनों अङ्ग्रेजियाँ थीं। लब-लप बरती हुई उसकी जीभ पल-लप रही थी। तिर के कठोर बाल अत्यन्त भाव से इधर-उधर बिखर रहे थे। हाथों और पैरों को छटपटा रही थी, अत्यन्त पीडा होने से वह दूरी पर्वत की चट्टान के समान ड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। गोष्ठ में गिरते ही वह उसी प्रकार मर गयी, जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से वृत्तासुर मर गया था।”

छप्पय

अरे, छोड़ दे लाल ! छोड़ दे बकी पुकारे ।
 किन्तु लालकी बानि पकरिके अवसि उबारे ॥
 हाबनि पईइनि पटकि पटकि के हा हा खावे ।
 देया वप्पा मरी राई कहि कहि डकरावे ॥
 चुचो ने पीड़ा अपिक, माया बाकी तुलि गई ।
 मुँह फाट्यो निरजीय है, बाल बल्लेरे गिरि गई ॥



मरी पूतना की भयंकरता

[८५७]

पतमानोऽपि तदेहस्त्रिगन्धूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयामास राजेन्द्र ! महदासीत्तदद्भुतम् ॥❀
(श्री० भा० १० स्क० ६ म० १४ श्लो०)

छप्पय

गिरी पूतना तुरत नाश सब ब्रज को कीन्हों ।
कंस बाग छे कोस ताहि चोपट करि दीन्हों ॥
सुख मानो-गिरि युहा दाढ़ि खँटा सम ताकी ।
बूचो पर्वत शिखर आसि कृष्ण सम बाकी ॥
सूखे सर सम उदर अति, थूल देह पग तेतु सम ।
बरपे गोपी गोप गन वज्र गिरयो अस भयो भ्रम ॥

सत्य और माया दोनों देखने में तो एक में प्रतीत होते हैं,
किन्तु अन्तर इतना ही है, सत्य तो सनातन है, वह सदा बना
रहता है, माया अधिक समय तक टिकती नहीं । आपत्ति विपत्ति
उपया सकट आते पर सत्य अधिकाधिक खरा मिला होता है, किन्तु
माया तनिक-सा सकट आते ही खुल जाती है, बनावट के घर भी

श्री गुरुदेवजी कहते हैं—“राजन् ! पूतना के मुँहक शरीर ने गिरते-
गिरते भी छः कोश के बुझो को कुचल डाला । देखो, यह कहीं मति
भद्दुत पटना हुई ।”

बनावटी होते हैं, वे तनिक-सी ठेस में ही उखट जाते हैं ! इसीलिए माया का प्रभाव क्षणिक होता है। असत्य का प्रभाव स्थाई नहीं होता है। अधिक दिन तक नहीं चलता। वनाग्रत जब खुलती है, तो भलो भाँति खुल जाती है, तब लोगो को उसकी भयकरता प्रतीत होती है, कि किस प्रकार यह विष से भरा कनक का घट था। ऊपर से चमक रहा था, भीतर भयावह था, भगवान् तो माया के पति हैं उनके सम्मुख कोई माया करके भी जाता है, तो उसका भी कल्याण कर देते हैं। एक कथा है, कोई राजकुमारी थी, भगवान् की पूजा करती थी। कोई अन्य राजकुमार उसे वश में करना चाहता था। उसने अनेक उपाय किये किन्तु राजकुमारी ने उसकी ओर देखा तक नहीं। तब उसने माया का आश्रय लिया। उसने एक वनावटी गरुड बनाया, अपने वनावटी दो हाथ लगाये किरीट मुकुट पहिनकर विष्णु का वेप रखकर वह किसी प्रकार राजकुमारी के पास जाने लगा। राजकुमारी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उसकी पूजा करने लगी। ऐसे कई दिन हो गये। किसी ने राजा को समाचार दिया, राजकुमारी किसी से बात करती है। छिपकर राजा ने देखा। वे हाथ में नम्र खड्ग लेकर गये। जब उन्होंने देखा अवश्य कोई है, तो वे क्रोध में भरकर गये। राजकुमार डर के कारण काँपने लगा। वह सवर्त्मभाव से भय के कारण भव-भयहारी भगवान् की वीनय करने लगा। उसका ऐसा चित्त एकाग्र हुआ कि वह निर्जिव गरुड सजीव होकर उसे लेकर उड़ गया। वेप तो उसका वनावटी ही था, किन्तु भगवान् का वेप था, उसके साथ भगवान् का सम्बन्ध था, अतः अपने वेप की लाज रखने को भगवान् ने उसकी रक्षा की। दैत्य भगवान् को शत्रु समझकर क्रोध-पूर्वक उनका स्मरण करते हैं, उनसे युद्ध करते हैं। किसी माय से सही, कैसे भी

सही, उनका सम्बन्ध तो भगवान् से है। भगवान् उसी सम्बन्ध से उन्हें तार देने हैं, उनके क्रीव, दुर्गुण तथा माया की ओर ध्यान नहीं देते।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! पूतना जीवितावस्था में तो बड़ी सुन्दरी बहू बनकर आयी थी। मरने पर वह बड़ी विकराल हो गयी। उसका शरीर भूत की भाँति, कामवासना की भाँति, लोभी-की धन इच्छा की भाँति तथा रुई में लगी अग्नि की भाँति बढ़ने लगा। जीवितावस्था में तो उसने सहस्रों बालकों को मारा ही था, मरते समय गिरते-गिरते भी उसने लाखों वृक्षों को चकनाचूर कर डाला, उसका शरीर इतना बड़ा कि छः कोश के जितने वृक्ष थे, सब चकनाचूर कर दिए। लोग देखकर परम आश्चर्य में रह गये, कि राजर्षी का शरीर छे कोश लम्बा हो गया और उसके शरीर के नीचे जितने भी वृक्ष दबे, वे सब कुचल गए, टुकड़े-टुकड़े हो गये।”

इस पर शोनकजी ने पूछा—“सूतजी ! गोकुलजी से मथुराजी तो दो कोश भी नहीं है, तब तो मथुरापुरी भी चकनाचूर हो हो गयी होगी यमुनाजी का प्रवाह भी रुक गया होगा ?”

इस पर हँसकर सूतजी बोले—“अजी, महाराज ! भगवान् के द्वारा भला इतनी भूल कैसे हो सकती है। गोकुल से मथुरा है उत्तर की ओर, जिसका भगवान् ने दूध पिया, जिसे माता बनाया, मरते समय उसका मुख उत्तर की ओर कैसे बरते ? तब उसकी सद्गति कैसे होती। भगवान् न उसे दक्षिण की ओर-दाऊँजी की ओर-भुँद करके फेंका। उधर कंस का छः कोश का एक सुन्दर बगीचा था। उधर का लाठी उसी का सिर; उस बगीचे में फँसा कि मामा का इतना घना बाग गुड़ी डडा खेलने का स्वच्छ स्थान हो गया।”

शौनकजी ने कहा—“अच्छा जब वह मथुरा की ओर नहीं फँकी गयी, तो मथुरा से लौटते समय नन्दादि गोपों को उसका मृतक शरीर मार्ग में कैसे मिला।”

सूतजी ने कहा—“महाराज ! सिर ही तो उसका दक्षिण पूर्व के बीच में गिरा; पर तो उत्तर की ही ओर गिरे थे। ज्यों ही नन्दादि गोप यमुनाजी को पार करके आये, कि पहाड़ सी पड़ी वह पूतना दिखायी दी।”

शौनकजी ने कहा—“अब सूतजी ! क्या कहें छ. कोश लम्बी लुगाई तो हमने कभी देखी नहीं। आप शास्त्रोंय बात कह रहे हैं, उसे काट भी नहीं सकते।”

सूतजी बोले—“भ्रजो, महाराज ! वह साधारण लुगाई थोड़े ही थी, राक्षसी थी। माया से मेहराब बन गयी थी। उसका मुख ऐसा था मानो पाताल का बड़ा भारी विवर हो। उसकी दाँटें ऐसी थी, मानो हलकी फाल हो। नासिका ऐसी थी मानो सुमेरु पर्वत के शिखर में दो बड़ी-बड़ी गुफाएँ हो। उसके दोनों स्तन ऐसे थे, मानो अजन पर्वत के दो टुकड़े पड़े हो। उसके कंठे-कंठे लाल-लाल, बिखरे हुए बाल ऐसे लगते थे, मानो मकई की भुट्टियों में से बहुत-सा सूत निकालकर किमी ऊँचे पर्वत पर बिखेर दिया हो। उसकी छाँड़ ऐसी लगती थी, मानो दो बिना जल के धधे झरूँ हो। तीन कोश लम्बी-लम्बी जघाएँ ऐसी लगती थी, मानो महापर्वत के दोनों शरद कालीन तट हो। उन जघामों के नीचे के घुटने ओर पर तथा उनके ऊपर पड़े हुए दोनों हाथ ऐसे लगते थे, मानो नदों के ऊपर किसी ने पोपों का ऊँचा नीचा पुल बाँध दिया हो। बड़ा भारी लम्बा चौड़ा पेट जो मरने के कारण पिचक गया था, सूँचे सरोवर के समान दिखायी देता था।”

पूतना के ऐसे भयंकर शरीर को देखकर समस्त गोप गोपी-

गण भय के कारण थर-थर काँपने लगे। सब भार्गव चकित होकर इधर-उधर रहस्यमयी दृष्टि से परस्पर में एक दूसरे को निहारने लगे। वे ऐसे डर गये थे, कि सहसा उनके मुखसे कोई शब्द नहीं निकलता था। जब भगवान् उसके प्राणों को पय के साथ भिलाकर पी रहे थे, तब उसने महान् चीत्कार किया। उसके उस कर्ण कटु व्यत्यस्त भयकर चीत्कार से समस्त ब्रजवासियों के हृदय प्रथम ही व्यथित हो गये थे सबके कान सुन्न पड़ गये थे। मस्तिष्क में चक्कर-से घाने लगे थे, अब इसके अद्भुत भयकर रूप को देखकर तो उनका रहा सहा धम भी छूट गया।

और सब तो भयभीत हो रहे थे किन्तु बालकृष्ण उसके वक्ष स्थल पर निर्भय हुए पड़े थे। उनका मुख उसकी चूल्ही में लगा था। वे हाथों को फटफटाकर ऐसे खेल रहे थे, मानो—मामा के भेजे खिलौने से खेल रहे हों। अपने पुत्र की विपत्ति के मुख में देखकर वित्तनो भी भारी विपत्ति क्यों न हो, मातृ-हृदय नहीं मानता, उससे नहीं रहा जाता। विपत्ति के सिर पर पर रखकर माता अपनी सन्मान की रक्षा करती है। यशोदा मैया ने जब देखा, यह दूध पिलाने वाली रॉड तो कोई राक्षसी निक्ली, तब तो वे बालक को उठाने के लिए दौड़ी। रोहिणी मैया की भी तब तक चेत हो गया था, वे भी नंदरानी को दौड़ते देखकर राक्षसी की ओर दौड़ी। घर की दासियों से भी न रहा गया, वे दोनो माताओं से आगे दौड़कर राक्षसी की छाती पर चढ़ गयीं और लालजी को उठाकर मुट्ठी बाँधकर उसी प्रकार भागी जैसे कोई जलती अग्नि में से चक्के को निकाल कर भागती है।

आकर गोपियों ने लालजी की माताजी की गोद में दिया। लालजी की गोद में सभी का भय जाता रहा, क्योंकि प्रभु तो अभयदाता ठहरे। उन्हें अपना भय तो रहा नहीं, बालक के

विषय में उन्हें भय बना ही रहा । न जाने वच्चे को क्या हो गया ? इस राक्षसी ने न जाने क्या जादू टोना कर दिया ?

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जो विश्व ब्रह्माण्डों की रक्षा करते हैं, उन विश्वम्भर की गोकुल की गोपिकाएँ गोपुच्छादि से रक्षा करने लगीं ।”

छप्पय

छातीपे प्रसु परे प्रेमहीं करत किलोलें ।
 मामा भेज्यो वँध्यो खिलौना मानो सोलें ॥
 नहिँ भय नहिँ कछु रोप सरकि इतरीं उत आवे ।
 भैया हाहाकार करे गोपी पवरावे ॥
 भई रोहिणी विकल अति, गिरी लिये बलरामहूँ ।
 ऋषि एक गोपी तुरत, से आई घनद्वयहूँ ॥



जगरत्नक की गोपियों द्वारा रत्ना

[८५८]

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिर्मास्तव जान्वथोरु,

यत्नोऽच्युतः कटितटं जटार ह्यास्यः ।

हृत् केशमस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठम्,

विष्णुर्भुज मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥❀

(धो भग० १० स्क० ६ ध० २२ श्लो०)

छप्पय

धरि धीरज गो-युँछ लाल अग-अँग घुमाई ।

द्वादश गोबर तिलक करे गोरज लिपटाई ॥

करिकर अङ्गन्यास नाम पढि मग्न उचारे ।

पद अज रत्ना करे जानु मणिमान सग्हारे ॥

यत्नपुरुष उर उभय की, कटि अच्युत केराव हृदय ।

हयवीच प्रभु उदर की, ईश होहि हियपै सद्य ॥

* धी युक्तदेवजी कहते हैं—“राजन् ! गोपिकाएँ बालवृष्ण की रक्षा करती हुई कह रही हैं—‘अज भगवान् तेरे बरखो की रक्षा करे, मणिमान् जानुधो की यज्ञ पुरुष ऊरधो की, अच्युत कटि की, हयवीच उदर की, केराव हृदय की, ईश वक्षस्पर्श की, सुप कण्ठ की, विष्णु स्याधो की, उरुक्रम मुख की धीर ईश्वर तेरे सिर की रक्षा करे ।’

एक संत थे; उनके पास एक जिज्ञासु गया, उसने पूछा—
“संतजी ! भगवान् को कैसे पावें ?” संतजी ईश्वर की वीथ को
एक ओर से उठा-उठाकर दूसरे खेत में लगा रहे थे; उन्होंने
सरलता से कहा—“भगवान् को पाने में क्या प्रयास ? मन को
इधर से पट्ट करके उधर रखो, जो मन धव तक स्त्री, पुत्र, पति,
मित्र, सखा, स्वामी आदि में लगा, उसे ज्यों का त्यों उठाकर
भगवान् में लगा दो ।”

बात बड़ी सुन्दर है किन्तु संतजी को जितनी सरल दिखानी
देती है, उतनी हम साधारण जीवों के लिए सरल है नहीं।
भगवान् का रूप तो हमने देखा नहीं, भगवान् के स्पर्श का तो
हमने अनुभव किया नहीं। संसारी रूप को हमने देखा है, उसमें
हमारा मन फँस गया है, स्त्री, पुत्र के स्पर्श सुख का हमने अनुभव
किया है। मन उसमें इतना क्लेशित हो गया है, कि वह भगवान्
की कल्पना ही नहीं कर सकता। ठीक जितना हम अपने पुत्र से
प्यार करते हैं, उतना ही भगवान् से करने लगें, तो बेड़ा पार
है। संसार सौन्दर्य में तो हमारे नेत्र गड़ जाते हैं, किन्तु भगवद्-
विग्रहों के दर्शन करके हृदय द्रवित नहीं होता। किसी प्रकार
जैसे तेरे भगवान् में किसी सम्बन्ध से उनके किसी रूप में संसार
की ही भाँति आसक्ति हो जाय तो भगवान् वैसे ही बन जाते हैं।
ज्ञानी लोग योगी-गण कहते हैं, भगवान् सर्वगत हैं, सर्वव्यापक हैं,
ईश्वर हैं, किन्तु सर्वव्यापक के दर्शन इन चर्मचक्षुओं से होते नहीं,
उनके लिए दिव्य चक्षु चाहिए। दिव्य देह चाहिए। इस प्राकृत
देह में उसके प्रति प्रेम हो जाय, यह ऐश्वर्य से नहीं हो सकता।
मायुष्य के द्वारा ही इसका अनुभव होता है। ऐश्वर्य में निमृक्त
प्रेम होता नहीं, उसमें भय बना रहता है। हृदय खोलकर प्रेम
नहीं कर सकते। छाती से छाती सटाकर अपने प्रेमास्पद से

नहीं मिल सकते। माधुर्य में सब कुछ हो सकता है। रागानुगा जो भक्ति है, जो भगवान् से कोई सम्बन्ध स्थापित करके की जाती है, उसमें ऐश्वर्य का अभाव रहता है। कृष्ण हमारे सम्बन्धी हैं। उनमें हमारा यह सम्बन्ध है, इस सुख की कल्पना वही कर सकता है जिसका उस रस में प्रवेश हो। वहाँ ऐश्वर्य की गन्ध भी नहीं, कि ये सर्वेश्वर हैं, लक्ष्मी के पति हैं, इन्हें हम क्या दे सकते हैं। नहीं, माधुर्य में वे लान्य होते हैं वास्तव्य रस में धीकृष्ण की सब प्रकार से रक्षा करनी पड़ती है। एक कथा है—एक बुढ़िया का गोपालजी में वास्तव्य भाव था। वह गोपालजी को धपना बच्चा मानती थी, कुछ दिनों में साधना करते-करते गोपाल जी उससे बातें करने लगे, और इधर-उधर अंगन में धुंठो चलने लगे। बुढ़िया दिन भर उन्हीं की देख-रेख में लगी रहती। मेरा लाला बड़ा बखल है कहीं बरोसी की आग में हाथ न दे दे कहीं इधर-उधर न चला जाय। वह गो भी दुहती तो लाला के लिये, जो भी करती लाला के निमित्त ही करती। एक दिन उसने सुना—“गाँव में भेड़िया आ गया है।” बुढ़िया बड़ी भयभीत हुई, उसने सोचा—‘ऐसा न हो, भेड़िया मेरे लाला को उठा ले जाय। वह अत्यन्त निर्धन थी, घर टूटा-फूटा था, उसे भय लगा कहीं मेरी फूटी दीवाल से भेड़िया न आ जाय। इसलिये राति भर न सोती। डण्डा लिये बैठी रहती।

भगवान् ने सोचा—‘यह तो बुढ़िया पर बड़ी विपत्ति आयी।’ राति में वे चतुर्भुज रूप बनाकर आये और किवाड़ें खटखटायी और बोले—“बुढ़िया ! माँ ! किवाड़ खोल।”

बुढ़िया ने कहा—“तू कौन है ?”

भगवान् ने कहा—“मैं धिष्णु हूँ, तुम्हें वर देने आया हूँ।”

बुडिया ने कहा—“तुझे विष्णु फिर्लु से क्या लेना। सम्भव है तू भेडिया हो हो, मेरे लाला को हो उठा ले जाय। मैं किवाड नहीं खेलती।”

भगवान् ने बहुत समझाया बुझाया, बुडिया ने किवाड खोली। चतुर्भुज रूप से भगवान् ने दर्शन दिये और वर माँगने को कहा।

बुडिया ने कहा—“यदि तुममें सचमुच वर देने की सामर्थ्य है, तो यही वर द, कि मेरे लाला को भेडिया न उठा ले जाय।” यह सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले, “अरो, मैं भेडिया भव कहाँ है, वह तो भाग गया।” तब बुडिया को सन्तोष हुआ। यही शुद्ध मायुष्य भाव की उपासना है। जो विश्व की रक्षा करने वाला है, उसकी कुत्ता बिल्ली से, भूत प्रेत से रक्षा करने के लिये व्यग्र रहना यही वास्तव्य भाव की पराकाष्ठा है, ब्रज के अतिरिक्त इस भाव की उपलब्धि श्रम्यत्र कठिन है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब पूतना मरकर षडाम से घरती पर गिर गयी, तो उसके शब्द से ही गोप गोपी-गण मूर्छित से हो गये। माता रोहणी बालक को पकड़ने के लिये दौड़ी, किन्तु वे प्रेम में विह्वल होकर मार्ग में ही गिर गयी। यशोदा जी भी दौड़ी, तब तक ही किसी गोपी ने दौड़कर लालजी को उठा कर यशोदा मैया की गोद में दे दिया। लालजी नेत्र बन्द किये हुए थे। दोनों हाथों की मुट्ठी बांधे हुए थे, मानो वे पूतना मौखी से कुछ दान दक्षिणा अपनी मुट्ठी में दवा लाये हो। अब तो पूतना को तो सब भूल गयी। मिलकर सब यशोदाजी के चारों ओर फिर आयी। यशोदा मैया रोहिणी जी के समीप लालजी को लेकर पहुँची। लालजी का स्पर्श पाते ही, वे उठकर खड़ी हो गयी। लालजी को देखकर उनके हृदय का ठिकाना नहीं रहा।

गोपिया वात्सल्य भावो मे भोगी हुई' बालकृष्ण को रक्षा करने के विषय मे भाति-भाति की चर्चा कर रही थी। कोई कहती—'यह चुडेल है चुडेल। कोई भूतनी बताती, कोई डाँकिनी, साकिनी, राक्षसी, यातुघानी तथा अन्याय वालघातनी ग्रहों के नाम लेती। कोई कहती—'भोर पख का भाड़ा दो, कोई नीम के पत्तो का भाड़ा बताती। कोई स्याना छुलाने को कहती कोई भूत प्रेत उतारने वाले को बुलवाने पर बल देती। इनने मे ही एक बूढ़ी-सी गोपी ने कहा—'हमारे यहाँ भूत प्रेत का उपद्रव कैसे हो सनता है। हम सब तो वेष्णव हैं, श्रीमन्नारायण के उपामक हैं, गोएँ ही हमारी परम देवता है। जहाँ लोग अपने नित्य कर्मों मे भक्ता के भर्ता भगवान् के सुमधुर नामो का कीर्तन नहीं करते, उनके श्रेयोभय पावन यश का गान नहीं करते, वही ऐसी राक्षसियों का बल बढ़ता है। भगवान् का नाम गुण कीर्तन तथा श्रवण तो सभी प्रकार के भयों को दूर करने वाला है। उनके सम्मुख ये राक्षस राक्षसी क्या कर सकती हैं। गो की पूँछ वा भारा दो, गोबर का तिलक लगाओ, माथे पर गोरज लगाओ। भ्रमो मे भगवान् के नाम भक्तों को पड़ो सब ठीक हो जायगा।"

अत्यन्त दीनता के स्वर मे श्राँसू बहाते हुए यशोदा मैया ने उसी बुद्धिया गोपी से कहा—'चाचीजी! तुम ही बड़ी बूढ़ी हो, मग तब भाड फूँक सब जानती हो। मेरे बच्चे का जेसा उचित समयो उपचार कर दो। तुम सब का बच्चा है, किसी प्रकार यह श्रच्छा हो जाय।"

बुद्धिया ने अपनी बात पर बल देकर कहा—'लाओ सब मिलकर करें। चलो, सब गोघो के गोष्ठ मे।" यह कहकर मुँड की मुँड गोपिया गोष्ठ मे पहुँची। वहाँ उन्होंने प्रथम सबसे

सीधी भाग्यवती स्वामी गौ की पूँछ से लालजी को भाड़ा। कई बार गौ-पूँछ को लालजी के समस्त अंगों पर घुमाया। फिर सुंदर सुगंधित गोबर लेकर अंगों पर लगाया, फिर गोमूत्र से स्नान कराया। फिर सब अंग में गोघ्रों के खुर को रज लगायी। तदनन्तर ललाट में कंठ में, नाभि में, हृदय में, वाम और दक्षिण पाश्वर्य में, सूर्ध में, पीठ में, दाये और बाये कान में तथा दानो भुजा-श्रो में इन बारह स्थानों में गोबर के तिलक लगाये। फिर सबने शुद्ध यमुनाजल से स्नाचमन किया। फिर भगवान् के ध्वज, मणिमाला, यज्ञपुरुष, अच्युत, हयग्रीव, केशव, ईश, सूर्य, विष्णु, उरुक्रम और ईश्वर इन ग्यारह बाज मन्त्रों से अपने ध्वजों में ध्वजान्वास तथा करन्यास किया। क्योंकि स्वयं देवता बनकर ही देवता का पूजन करना चाहिए। लालजी के ध्वजों में भी इसी प्रकार दीवन्वास किया। फिर भगवान् का नाम लेकर उनके सब ध्वजों की रक्षा करने की प्रार्थना करने लगी। गोपियाँ भगवान् के नाम मंत्रों की पद्धति हुई प्रत्येक ध्वज पर हाथ रखकर प्रार्थना करने लगी। मेरे लालजी, तुम्हारे लाल-लाल कोमल-कोमल छोटे-छोटे चरणों की रक्षा ध्वज भगवान् करें। तुम्हारे सुन्दर जानुओं की रक्षा मणिमाला भगवान् करें, उरुओं की यज्ञ-पुरुष करें, केहरि के सदृश कमनोय कटि की रक्षा अच्युत भगवान् करें, पीछर के पत्तों के सदृश सुन्दर उदर की रक्षा हयग्रीव भगवान् करें। तुम्हारे हृदय की रक्षा वलेशहारी केशव प्रभु करें। वक्षःस्थल की देख-भाल ईश करें और कण्ठ की भगवान् सूर्यनारायण देव। गुजाओं की विष्णु भगवान् सुरक्षित रखें, उरुक्रम भगवान् तुम्हारे छोटे से बटुआ-से मुझ की रक्षा करें, सिर की रक्षा ईश्वर करें, वे सिर में पीछा न होने दें। लालजी! तुम्हारे आगे-आगे चक्र लेकर चलने वाले चक्रों भगवान् रक्षा-

करते रहे। पीछे गदा को धारण किये हुए गदाधर भगवान् देख-भाल किया करें। कोई जगली जीव पीछे से मारने आये तो गदा से उसका सिर तोड़ दे। तुम्हारे दायें पख बांड़ों की रक्षा धनुष धारण करने वाले भगवान् मधुसूदन करें तथा दायें पख बांड़ों की रक्षा खड्ग धारण करने वाले भवन भगवान् करते रहें। चारों कोनों में शंखधारी उदगाय भगवान् रक्षा करें।

मेरे प्यारे लालजी ऊपर से उपेन्द्र भगवान् तुम्हारी रक्षा करें, नीचे से अपने पखों को फटफटाते हुए गरुडजी तुम्हारी सार सम्हार करते रहें। पृथ्वी पर हल को धारण करने वाले हलधर भगवान् तुम्हारी रक्षा करें और सब ओर से परम पुरुष तुम्हारी पूर्णरीत्या सब संकटों से रक्षा करें। लालजी! तुम्हारी इन्द्रियों की रक्षा हृषीकेश भगवान् करते रहे, प्राणों का पालन नारायण भगवान् करें, चित्त की सार सम्हार श्वेतद्वीपपति भगवान् करें। मन की रेल-देख सदा योगेश्वर भगवान् करें। बुद्धि की रक्षा पश्चिर्भ भगवान् करें और अहङ्कार पर अपना अधिकार पदेश्वर्य सम्पन्न परमात्मा किये रहें। लालजी! जब तुम व्रज की गोपियों में हम सब को सुख देते हुए कमनीय क्रीड़ा करो, तब तुम्हारी रक्षा गोविन्द भगवान् करें। जब मया थप-कियाँ दे देकर तुम्हें “आजा रो, नींदरियाँ काल कटे तेरी मूडरियाँ” कहूँ कहकर लोरो दे देकर सुलावेँ, तब सोते समय नींद में तुम्हारी रक्षा साधव भगवान् करें। जब तुम “पॉ पॉ पैया, गुर की डलियाँ।” कहकर पॉ पॉ पैयाँ चली, तो उस समय चलने के काल में बंकुण्ड भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। जब तुम बंड़ो तब तुम्हारी रक्षा श्रीपति भगवान् करें। जब तुम मैया के हाथ से सम्मा करो—भोजन पाओ—तब समस्त क्रूरग्रही को भयभीत

करने वाले यक्षभुक्त भगवान् तुम्हारी रक्षा करें। यदि तुम पर किसी डाकिली, साकिनी, यातुघाती, तथा कूष्माण्डा आदि बाल-घातिनी ग्रह चढ़ आयीं हो अथवा कोई भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना आदि क्रूरग्रह चिपट गयीं हो अथवा शरीर, इन्द्रिय और प्राणों का नाश करने वाले उन्माद, अपस्मार आदि कोई रोग तुम्हारे शरीर में घुस गये हो, अथवा जो उत्पात स्वप्न में दिखाई देते हैं, उनमें से किसी उत्पात ने तुम्हें घर दवाया हो या कोई वृद्ध-गण को ग्रह या बाल-गण को ग्रह कही से भागती हुई तुम्हारे शरीर में चिपट गयी हो, तो वे सब भगवान् विष्णु का नाम उच्चारण करत ही तुरन्त नष्ट हो जायें, तुम्हारे सुन्दर शरीर को छोड़कर ये सभी ग्रह, उत्पात, रोग, शोक आदि यहाँ से चले जायें “विष्णवे नमः, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः !” यह कहकर गोपियों ने तालियाँ बजायी और लालजी के मुख की ओर देखने लगीं।

अपने ही नाम से अपनी रक्षा करते देखकर लालजी को हँसी आ गयी। वे अपने सुन्दर से बालचन्द्र मुख को फँलाकर हँस पड़े। लालजी की हँसी की देखकर सभी के हृदय खिल उठे।

उसी वृद्धी गोपी ने यशोदा मँया से कहा— ‘नंदरानी तुम लाला को अपना आँचल तो पिलाओ। बच्चा डर गया हो और फिर यदि दूध पीने लगे, तो समझना चाहिए, उसका डर भाग गया है। बच्चे क्षण भर में डर जाते हैं, फिर क्षण भर में उस बात को भूल जाते हैं।’

यह सुनकर माता ने शोषता के साथ दूध से परिपूर्ण माँ-स्नेह क मरे, अपने स्तन कजुकी से निकालकर लालजी के मुख में दिया। स्तन पाते ही लालजी चुसुर चुसुर करके पीने लगे।

जगरक्षक'की गोपियों द्वारा रक्षा १६१

लालजी को दूध पीते देखकर गोपियों के होंठों का ठिठाना नहीं रहा। वे बड़े उल्लास के साथ मिलकर कीर्तन करने लगीं—

“श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! अब लालजी दूध पी चुके, तो माता ने जाकर गुदगुदी शय्या पर उन्हें सुना दिया और स्वयं उन्हें मुलाती हुई गीत गाने लगीं।”

छप्पय

सूर्य कदर, सुख विष्णु, उरुकम सुल, सिर ईश्वर ।
रक्षे चको अम, हलायुध बाहर भीतर ॥
मधुसूदन अरु अजन करे रक्षा पार्थनिकी ।
भूछ गदाधर, परमधुर शैल सवहि दिशनिनी ॥
कौणनिगह उलगाय प्रभु, हृषीकेश इन्द्रिय सकल ।
श्वेतद्वीप पति चित्तकू, योगेश्वर मनकू प्रवल ॥



पूतना की सद्गति

[८५६]

पूतना लोकनाखमी राक्षसी रुधिराशना ।

त्रिषांसवापि हरये स्तन दत्त्वाऽऽपसद्गतिम् ॥*

(श्रीमा० १० स्क० ६ प० ३५ श्लोक)

छप्पय

अहङ्कार भगवान् बुझिहूँ पृथ्वीमं प्रभु ।

कीड़ागहँ गोविन्द शयन रत्ने माधव विसु ॥

चलिचैमहँ वैकुण्ठ वैठिवैमहँ स श्रीपति ।

करै यज्ञ युक् अशन माहिँ भयते कमलापति ॥

सुनि रक्षा हरि हँसि गये, स्तन पीयो कीयो शयन ।

इत गोपनि भगमहँ लरुयो, परयो पूतना-भीम तन ॥

जो जिनका स्वभाव होता है वे उसे छोड़ना भी चाहें तो नहीं छोड़ सकते । पारम का स्वभाव है, लोहे को सोना बनाना, इच्छा से, अनिच्छा से, दिन से रात से, नया हो, पुराना हो, शुद्ध हो, मशुद्ध हो, कंठा भी बयो न हो सतर्ग होते हो वह लोहे को

* श्री गुरुदेवजी कहत हैं—'राजन । देखिए, पूतना लोक के बालकों को मारने वाली थी, रक्त पीती थी तथा राक्षसी थी । उसने भगवान् को दूध पिलाया था, सो भी प्रेम से नहीं मारने की इच्छा से, इतने पर भी उसे सद्गति प्राप्त हुई ।'

सोना बना देगा। यदि बीच में व्यवधान हुआ, तो पारस के समीप रहने पर भी उससे सटा रहने पर भी लोहा सुवर्ण न होगा।

अनाश्रित भाव से व्यवधान शून्य होकर उन्मुक्त भाव से परस्पर में सटा जाना चाहिए। एक तो अपने साधन द्वारा भगवान् की ओर बढ़ते हैं। एक को भगवान् बल-पूर्वक अपने ओर खींच लेते हैं। कैसे भी हो भगवान् से, काम से, क्रोध से, द्वेष से, भक्ति-भाव तथा सम्बन्ध से मन लग जाय, उनके समीप चला जाय, तो भगवान् न भी चाहें, तो भी उन्हें पार करना ही होगा। घाट पर नौका लिये मज्जाहू खड़ा है। एक तो शूलक देकर नौका में बैठ जाते हैं, जिन पर पैसा नहीं हाता, वे अनुनय विनय करके दें नता दिखाकर केवट की कृपा पाकर बैठ जाते हैं। एक को केवट बल-पूर्वक बाँधकर खेल के लिए नौका में डाल देता है। उसका तो काम ही पार करना है। अब वह उस नौका में बंधे पड़े हुए को न भी चाहें तो भी पार तो ले जाना ही होगा। बीच में तो छोड़ नहीं सकता। इसी प्रकार जो जप, तप, यज्ञ, अनुष्ठान, समाधि आदि कठिन साधनों द्वारा भगवान् की प्रसन्न करते हैं, वे भी ससार-सार से पार होते हैं जो विद्या, बुद्धि, धन तथा अन्य-साधन न होने से दोन हीन हैं, साधन बिहीन हैं, वे रोकर उनका नाम पुकारकर उनकी कृपा लाभ करके पार हो जाते हैं। कुछ ऐसे हैं, उनसे लड़ने ध्यान है, तो भगवान् उन्हें अपने अस्त्रों से मार कर पार कर देते हैं पार तो सभी हो ही जायेंगे, किन्तु पार जाने में भी अन्तर है, किमी से प्रेम हो गया उसे अपना बना लिया, किमी को तरन-सारन बना दिया; किमी को पार करके छोड़ दिया। सारांश यह है कि भगवान् के वाम कंसे भी पहुँच जाओ, कंसे भी मन उनकी ओर खिंच जाय, फिर कल्याण में कोई सदेह नहीं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! इधर तो लाखों माता के स्तनो

को पान करके सुल-पूर्वक पलकिया पर सो गये। उधर नन्दजी अत्यन्त शौच्यता के साथ शक्ति चित्त से नारायण का स्मरण करते हुए व्रज की ओर आ रहे थे। उन्हें वसुदेवजी की बात एक क्षण के लिए भी नहीं भूलती थी। उन्होंने वे पार हुए, कि उन्हें पूनना का बड़ा भारी शरीर मरा पड़ा हुआ दिखायी दिया। देख कर सभा गोप चकिन रह गये। अरे, यह तो कोई राई, चुड़ैल दिखाई देती है। नन्दजी अत्यन्त आश्चर्य विस्मय और भय की भंगी प्रदर्शन करत हुए गोपों से कहने लगे—“भैया! वसुदेवजी को हम नहीं जानते थे कि ये सिद्ध हैं। अब हमें विश्वास हो गया कि नि सदेह वसुदेवजी कोई साक्षात् ऋषि ही हैं। मनुष्य रूप रखकर भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए हैं। उन्होंने मथुरा में बैठे ही बैठे उत्पन्न की बात बता दी। देखो, कोई चुड़ैल मेरे लाला के ऊपर आयी होगी। गोपों ने इसे मार दिया होगा, किन्तु इसके शरीर में बाणों के घाव तो हैं ही नहीं। किसी और कारण से मर गया होगी। अब इसे यहाँ पड़ी रहने दें?”

ब्रजवासी तो भोरे होते ही हैं उनमें से एक गोप बोला—‘बाबा! देखा, सर्पण्डी मर भी जाती है, तो भी पश्चिम की वायु लगते ही जीवित हो जाती है। ऐसा न हो यह राक्षसी कहीं पुनः जीवित न हो जाय, मेरी सम्मति तो यह है, कि इस राई के शक्कों को काटकर जला दो। न रहे वाँस न बाजे वाँसुरी।’

नन्दजी ने कहा—‘हाँ भैया! ऐसा ही करो। काण्ठ तो यह छ कोश में दूटा पड़ा है, इसके यगों को काटो और चिताई चुन-चुनकर उन पर इसके शक्कों को रख दो।’

गोपा ने तुरन्त अमन पेठ काटने के संकटों गुरुहाड़े निकाल और काटन लग। काटत समय सबको दिव्य चन्दन की सुगन्धि आने लगी। काटकर जब उसके शक्कों को जलाया तो उसका जल

शरीर से जो दुःखा निकलता था, उसमें दिव्य अंगुष्ठ की-सी सुगन्धि भाली थी।

इस पर धौनकजी ने पूछा—“सूतजी ! उस पापिनी के पापमय शरीर से जिसने लाखों बालकों को विष दिया है, असंख्य प्राणियों के रक्त का पान किया है, उसमें अंगुष्ठ की दिव्य सुगन्धि कैसे निकली ?”

सूतजी बोले—“महाराज ! अब वह पापिनी कहाँ रहती। पारस से स्पर्श होने पर भी लोहा फिर लोहा रह सकता है क्या ? भगवान् ! उसके जन्म जन्मान्तरों के समस्त पाप तो भगवान् के स्तन पान करने से ही तत्काल नष्ट हो गये। मरते समय हृदय में भगवान् की मनोमयी मूर्ति ही आजाय, सम्पूर्ण मूर्ति तभी धावे केवल उनके चरण कमलों की छाया ही दिखायी दे जाय, ता प्राणों ससार सागर से पार हो जाता है। मानोमयी मूर्ति की बात तो कौन कहे, जिसने मरते समय भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन किये, उनके छोटे छोटे नन्हे-नन्हे चरणों को अपने हृदय पर धारण किया, जिसकी नुँची की भगवान् ने अपने मुख में लेकर पान किया, अपने ग्रन्थ पल्लव से भी कोमल करो से जिसके स्तन को पकड़कर दबाया, उसकी सद्गति होने में भी कुछ सन्देह किया जा सकता है क्या ? मरते समय ही उसका देहाभिमानो जीव दिव्य विन्मय सूक्ष्म शरीर में प्रविष्ट हो गया। उसी समय एक परम दिव्यमय विमान आया, वह सभी प्रकार की सुन्दर-सुन्दर साज-सामग्रियों से सजा सजाया था। उसमें बहुत से भगवत् पार्श्व बैठे थे, उन्होंने बड़े आदर से पूतना को बिठाया और भगवद् घाम में ले गये। उसका जो “ध्याप शरीर बचा रह गया, उसमें अंगुष्ठ की सुगन्ध उठना स्वभाविक ही था।”

अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करते हुए शौनकजी ने पूछा—
“सूतजी पूतना ने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था, जिसके कारण
देवताओं के भी पूजनीय, लोकवन्द्य, भक्तों के हृदय में निरन्तर
विराजमान रहने वाले भगवान् के चरण कमल मरते समय
हृदय पर अवस्थित रहे।”

हंसकर सूतजी ने कहा—किसी पुण्य से ऐसा सौभाग्य थोड़े
ही प्राप्त होता है, भगवान् में भावना होने से ही ऐसा सुयोग
मिलता है, भगवान् में जो जैसी भावना करता है, भगवान् उसे
वैसी गति प्रवश्य देते हैं।”

शौनकजी ने कहा—‘भगवान् की इसमें स्तन-पान कराने
की भावना कैसे हुई। इसे भगवान् के दशन कहाँ हुए?’

सूतजी बोले—‘महाराज ! जब भगवान् वामन रूप रखकर
व्रलि के छलने के निमित्त उसके यज्ञ में गये थे, तब उनका छोटा-
सा सुन्दर सुकुमार सुगठित सुहावना शरीर बड़ा ही मनमोहक
था। जो जो उसे देखतो वही अपने पुत्र की भाँति छाती से चिप-
टाने को अधीर हो उठतो। उसी यज्ञ-मण्डप में बलि पत्नी विध्या-
वली के उदर से उत्पन्न एक रत्नमाला नाम की उनको कन्या
थी। छोटे से बाला वामन को देखकर उस युवती कन्या की इच्छा
हुई, इन्हें मैं अपना स्तन पिलाऊँ। यद्यपि वह जानतो नहीं थी,
कि ये भगवान् हैं, वह तो उनके नन्हे-से सुकुमार रूप को ही
देखकर रोम गयी। मन में जो सकल्प उठता है, वह कभी न
कभी अवश्य पूर्ण होता है, फिर भगवान् के सम्बन्ध में उठा
सकल्प तो अवश्य ही पूरा होगा। भगवान् ने मन ही मन उसकी
अभिलाषा जानकर उसके सकल्प को करने का निश्चय कर लिया।
जब वह छोटा-सा छोरा भूत की भाँति बड़ने लगा, सब तो
वह बलि-कन्या रत्नमाला को बड़ा छोटा दिखायो दिया, उसे उध

पर बड़ा क्रोध आया, वह वामन बहुत को मारने के लिए दौड़ो। भस्मुर की पुत्री थी, बड़ी बलवती थी, उसे अभिमान था, मैं वामन की मास्की, किन्तु महाराज बलि तो बड़े घमटिया थे, उन्होंने उसे डाँट दिया—'बधा करती है जिसको हमने देने का वचन दिया है, उसे अवश्य देंगे। चल, उधर बैठ।' "

बैठी होकर बाप की बात कैसे टालती। वध से तो निवृत्त हो गयी किन्तु बालक को मारने का उनके ऊपर क्रोध करने का सकल्प तो उसका रह ही गया। चित्र खींचने वाले यन्त्र के सम्मुख सुम हँसते हुए खड़े हो जाओ हँसता हुआ चित्र खिच जायगा। रोते हुए या क्रोध करते हुए खड़े हो जाओ, वेंसा खिच जायगा। भगवान् को बेटा बनाने का सकल्प करो, भगवान् बेटा बन जायेंगे, शत्रु बनाने का सकल्प हो शत्रु बन जायेंगे। रत्नमाला के इस सकल्प को भी श्रीहृदि ने स्वीकार किया। यही बलिपुत्री रत्नमाला ब्रज में पूतना होकर प्रकट हुई। पूर्व जन्म की भावनाओं को पूरुष करने के निमित्त भगवान् ने उसका स्तन भी पान किया और अपने मारने के लिये प्रयत्न भी कराया। अन्त में सद्गति हो गयी। "

श्रीनकजी ने कहा—'सूतजी! हमने तो सुना है, भगवान् के दर्शन होने पर फिर जन्म नहीं होता, जब रत्नमाला ने जान में अनजान में भगवान् के दर्शन कर लिये तो फिर उसे ऐसी भयंकर राक्षसी योनि क्यों प्राप्त हुई ? "

सूतजी बोले—'हाँ, महाराज भगवान् के दर्शन होने पर फिर संसार चक्र नहीं रहता। फिर भी अवतार-रूप में साकार होकर जब भगवान् प्रकट होते हैं तो जिन-जिन को उनके दर्शन हो जाते हैं उनके कर्म-बन्धन तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु भगवान् को देखकर जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों की पूर्ति

के लिये भगवान् एक दो या तीन शरीर देकर उन भावों की पूति करते हैं उनको मनोऽभिलाषाओं को पूर्ण करते हैं। उनके ये जन्म कर्म भागों को भोगने के लिये नहीं, किन्तु अपनी भावना-गुस्सार भगवत्-लीला आश्वादन के रस को भोगने के लिये होते हैं। बलि के सिर पर पर रखकर उसे नापा या, किन्तु इन्द्र वनने की उनकी वासना थी, अगले मन्वन्तरो में इन्द्र बनेंगे, फिर परम पद को प्राप्त होंगे। दंडकारण्य के ऋषियों ने तो रघुनन्दन रूप में श्री राघवेन्द्र को आशीर्वाद दिया, उनका आतिथ्य किया, फिर भी उनकी इच्छा उन्हें हृदय से सटाने का, उनके साथ रमण करने की थी इसलिये उन्हें गोपी शरीर देकर रमण कराया और अपनी नित्य लीला में प्रवेश कराया। भगवान् तो वाच्छा-कल्पतरु हैं न ? वे तो सबकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। जिन्हें आहार निद्रा मधुनादि में ही सखानुभूति होती है, उन्हें वे ही देते हैं। कर्म के चक्र में ही घुमाते हैं। भगवद्दर्शन होने पर कर्म बन्धन नहीं रहते।”

शौनक जी बोले—“हाँ, तो फिर क्या हुआ ?”

सूतजी बोले—“महाराज उस राक्षसों के मृतक शरीर के घूँटों की दिव्य गन्ध को सूँघकर समस्त गोप परम विस्मित हुए। वे इस रहस्य को समझ ही न सके। नन्दजी का हृदय धक्-धक् कर रहा था। उन्हें पत-पग पर अपने ध्यारे पुत्र के अनिष्ट की आशका दबा रही थी। गोकुल में पहुँचते ही गोपों के मुख से पूतना के आगमन का, लालजी को दुग्ध पिलाने का तथा उसके मरकर मिरने का समस्त समाचार सुना। सुनकर वे परम व्याकुल हुए। बिना हाथ पर धाये ही वे भीतर अन्तःपुर में दौड़े गये। मेरा बच्चा कुशल-पूर्वक है, इससे उन्हें मन ही मन अत्यन्त प्रसन्नता हो रही थी, इतनी बड़ी पूतना कैसे मारी गयी, इससे, उन्हें परम

विस्मय हो रहा था। इसी प्रकार के द्वेषी भाव में भावित हुए वे घर में घुस गये। लालजी एक पलकिया पर पड़े कपकियाँ ले रहे थे। मंया उन्हें झुला रही थी, उनके मनोहर मुख कमल की अपलक भाव से निर्हार रही थी, कि सहसा ब्रजराज ने जाकर बच्चे को पलकिया से उठा लिया। बार-बार उनके छोटे से गोल-गोल बटुआ-से गोल आरसी जैसा नन्हें-नन्हें कपोलों की चूमा। मृगु के मुल्ल से बच्चे हुए अपने बच्चे को चूमते-चूमते वे अघाति नहीं थे। सहसा अपने प्राणनाथ की देखकर यरोदा मंया चौंर पड़ी। सिर नीचा करके उन्होंने आबल सम्हाला धार लजाते हुए बोली—“महर ! आप मधुरा से कब आये ? यहाँ तो बड़ा धनधं होने वाला था। नारायण ने ही रक्षा की। नहीं तो आज हम कहीं के भी न रहते। पुण-पुण की साधना के अनन्तर जो हमने निधि पायी थी, वह आज छितने वाली थी, तुम तो उदासीन ही रहते हो। यह कहकर नदरानो रो पड़ी और रोते-रोते ब्रजराज के चरणों के निकट गिर पड़ी। एक हाथ से लालजी को सम्हालते हुए ब्रजराज ने अपनी प्राणप्रिया को उठाया और क्षणस्त क्षण से वे उनकी पीठ की थापपाते हुए बोले—“महरि ! हमारे तो सर्वस्व श्रीमन्नारायण ही हैं। वे ही सर्वत्र भगल करेंगे। हमारा क्या है, नारायण का यह बच्चा है। उन्होंने ही दिया है, वे ही सकटों से रक्षा करेंगे, पाल-पोसकर बड़ा करेंगे।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! भगवान् रितने दयालु हैं, पूतना दाक्षिणी थी, बनावटी माता का उसने वेप मात्र बना लिया था। उसके त्रेप पर ही, रोझकर भगवान् ने उसे उत्तम गति प्रदान की, फिर जिन्होंने उन सर्वेश्वर, श्रीकृष्ण की तगी, माता कि समान अपना समस्त स्नेह, बटोरकर श्रद्धा-भक्ति से उनकी भिरापायी वस्तुएं प्रदान कीं, उन गोपियों की वे, वीर-वी गति देंगे। प्र

विषय मे मेरी बुद्धि विमूढ़-सी बन जाती है। देखिए, पूतना ने कोई सुकृत कर्म तो किया नहीं, छोटे-छोटे निरपराध बच्चों का वध ही तो किया था। उसने कोई भगवान् का भोग लगाकर उत्तम नैवेद्य खाया हो, सो भी बात नहीं, वह राक्षसी कच्चे रुधिर का पान करती थी। भगवान् को भी वह विष पान कराने ही शायी थी। स्तन-पान का तो उसने डोग रचा था, किन्तु कैसे भी सही स्तन-पान तो कराया ही। इसी स्तन-पान के कारण उसे मुक्ति दी। दूध पीने के उपलक्ष्य मे उसे परम पद दिया। फिर जिनके स्तन का भगवान् ने पान किया, उन माताओं और पौत्रों के सम्बन्ध मे तो कहा ही गया जा सक्ता है। क्या उनको फिर कभी अज्ञानजन्य समार की प्राप्ति हो सकती है ?”

शौनकजी बोले—“सूतजी! आपने यह पूतना मोक्ष की कथा तो बड़ी ही अद्भुत सुनायी। इसे सुनकर तो भगवान् की दयालुता भक्तवत्सलता शरणागत-प्रतिपालकता पर रोना आता है। अच्छा तो इस लीला श्रवण का माहात्म्य भी हमें सुना दीजिए।”

सूतजी बोले—“महाराज! जो पुरुष छोटे से मुनमुना सात दिन के बालकृष्ण की इस ‘पूतना मोक्ष’ नामक अद्भुत लीला का अट्टा भक्ति के साथ एकाग्रचित्त से श्रवण करेंगे, उनकी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र क चरणारविन्दों मे अविचल भक्ति होगी। उनके पादपद्मों मे प्रगाढ़ प्रेम होगा। इस विषय मे सदेह नहीं। मुनियो! इतनी कथा सुनकर मेरे गुरुदेव भगवान् शुक चुप हो गये। भगवान् को चुप होते देखकर श्रीकृष्ण-लीला रस के रसिक महाराज परीक्षित उनसे पुनः प्रश्न करने लगे। उन्होंने जो प्रश्न किया उसे मैं आगे कहूँगा आप सावधान होकर श्रवण करें।”